नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका ❑ वर्ष-5 ❑ अंक-७ ❑ मुम्बई ❑ जुलाई-2014 ❑ मूल्य-रु.9/-

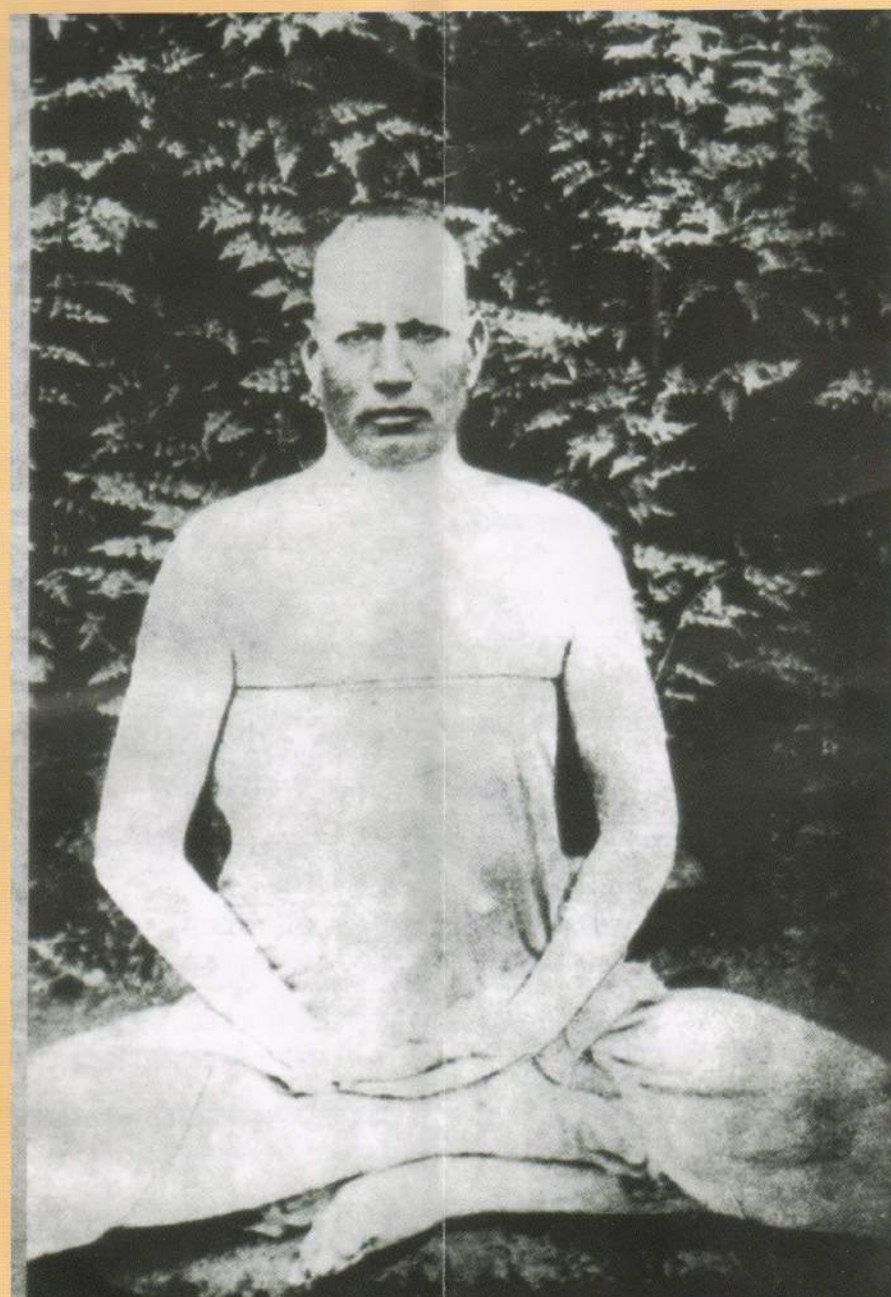

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

ओ३म्-परमात्मा का नाम

ईश्वर का निज व मुख्य नाम 'ओ३म्' है। **'तस्य वाचक: प्रणव:'**। वैसे तो ईश्वर के गुण कर्म व स्वभाव के अनुसार उसके अनेकों नाम हैं, किन्तु 'ओ३म्' नाम ही सर्वश्रेष्ठ नाम है। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के गुणों के आधार पर १०० नामों की व्याख्या की है, किन्तु उन्होंने बताया कि ओ३म् ही उनका प्रमुख नाम है। ''अवति इति ओम्'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सभी प्राणियों का रक्षक होने के कारण परमात्मा का नाम ओ३म् है। वेदों में यत्र-तत्र परमात्मा को ओ३म् शब्द से ही पुकारा है। **'ओं खम्ब्रह्म'** वेद में ही नहीं उपनिषद में भी ओ३म् शब्द को ही परमात्मा का वाचक बताया गया है- ''ओ३म् इति ऐतद् अक्षरं उग्दीथ उपासीत'' माण्डूक्य उपनिषद में भी कहा गया है- **''ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।''**

गोपथ ब्राह्मण में कहा है- **''आत्मा भेषज्यमात्मकैवल्यमोकार,''** ओंकार आत्मा की चिकित्सा और आत्मा को मोक्ष दिलाने वाला है। आगे कहा है **''अमृतं वै प्रणव:, अमृतेनैव तनमृत्युं तरति।''** ओम् जो प्रणव है वह अमृत है, जीवन है। इस अमृत द्वारा ही मनुष्य मृत्यु को पार करता है। याज्ञवल्क्य में कहा गया है

''माङ्गल्यं पावन धर्म्म सर्वकायप्रसाधनम्।
ओकारं परमं ब्रह्म सर्व मन्त्रेषु नायकम् ।।''

ओम् मंगलमय है पवित्र है, धर्म कार्य रुप है, सर्व कामनाओं की सिद्धि का हेतु है। यह ओम् परम ब्रह्म है और सब मन्त्रों का शिरोमणि है। **''प्रजापतेर्मुखोत्पन्नं तप: सिद्धस्य वै पुरा। जपेन दहते पापं प्राणयामैस्तथाऽसमप्''**।। यह ओम् सर्व प्रथम प्रजापति के मुख से उत्पन्न तथा उच्चारित हुआ, तपस्या से सिद्ध हुआ। ओम् के जप और प्राणायाम द्वारा सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मण्डूक उपनिषद के ऋषि ने आत्मा का ध्यान ओम् द्वारा ही बतलाया है- **''ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं, स्वस्ति व:, पराम तमस: परस्तात्।''** अर्थात उस आत्मा का ओकारं रूप में ध्यान करो, तुम्हारा कल्याण होगा। गाढ अंधकार के भी परे ले जाने का यही साधन है। अग्नि पुराण में भी ओम् ही को सार बतलाया है- **''ओकारं यो विजानाति, स योगी स हरि: पुमान्। ओंकारमभ्यसेत् तस्मान्मन्त्रा सारन्तु सर्वदम्।।''** अर्थात जो पुरुष ओंकार को जानता है, वही योगी और वही हरि है। यह ओंकार सारे मन्त्रों का सार है। इसीलिए इसी का सदा प्रयोग करना चाहिए।

योग शिखोपनिषद में इसके जप और ध्यान की विधि बताई है- **''मन: सर्वत्र संयम्य ओंकारं तत्र चिन्तयेत्। ध्यायेत सततं प्राज्ञो हत्कृत्वा परपेष्ठिनम्।।''** अर्थात सारे विषयों से मन का सयंम करके ज्ञानी साधक मन में 'ओम्' का ध्यान करते हैं और परमात्मा को हृदय में स्थापन करके सर्वदा उसी का चिन्तन करते हैं। ओम् के 'अ' के उच्चारण से ओज की वृद्धि होती है क्योंकि ओ३म् का उच्चारण करते समय मूलबंध लगता है जिसमें वीर्य उर्ध्वरिता हो जाता है। लम्बे समय अभ्यास से मूलबंध चक्र प्रवाहित होने लगता है 'उ' के उच्चारण से उदरशक्ति का विकास होता है। उसमें उड्डयान बन्ध लगता है जिसने उदर रोग नष्ट होते हैं। इससे मणिपूरक चक्र क्रियाशील होता है। 'म' के उच्चारण से मस्तिष्क की शक्तियों का विकास होता है जिससे सहस्र चक्र प्रवाहित होता है।

ओ३म् बीज मन्त्र होता है। इसके उच्चारण से अल्फा तरंगे उत्पन्न होती हैं जो मस्तिष्क को शान्त करती हैं। किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए हमें उसका नाम लेना पडता है और वो भी सही नाम लेना चाहिए तभी वह आपके पास आता है, आपकी बात सुनता है। इसी प्रकार ईश्वर को बुलाने के लिए उसके सही नाम 'ओ३म्' का ही प्रयोग करना चाहिए। यही ओ३म् हमें भव सागर से पार कराएगा और अन्त में यही ओ३म् हमें मुक्ति तक पहुंचाएगा।

संदीप आर्य
मन्त्री-वैदिक मिशन मुम्बई

बोध कथा

वर्तमान से भविष्य की युति

भविष्य है वर्तमान का मानसपुत्र। जो प्रत्यक्ष भविष्य के बारे में नहीं सोचता, वह जीवन के उत्तरार्ध्द को सुखी नहीं बना सकता। जो परोक्ष भविष्य (मरणोत्तर जीवन) के बारे में नहीं सोचता, वह आत्मिक विकास से वंचित रह जाता है।

एक राज्य की परम्परा थी- पचीस वर्षो के राज्य-शासन के बाद राजा राज्यासन से मुक्त हो जाता और उसे जंगल में छोड़ दिया जाता। अनेक राजे जंगली जानवरों के भक्ष्य बन गए। एक राजा ने चिन्तन किया और जंगल को स्वर्ग बना दिया।

सुन्दर भवन, सुन्दर उद्यान, मनोरम जलाशय, उर्वरा कृषि-भूमि। एक आकर्षक और दर्शनीय नगर का निर्माण करा दिया।

समय आया, राज्य-सिंहासन को छोड़ा, जंगल में चला गया। उसके लिए जंगल मंगल बन गया।

वर्तमान को भविष्य के संदर्भ में देखा और भविष्य को वर्तमान के संदर्भ में देखा। वर्तमान और भविष्य की युति ने भयावह जंगल को रमणीय और दर्शनीय स्थल बना दिया।

साभार-प्रेक्षा-ध्यान

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ५ अंक ७ (जुलाई-२०१४)

- दयानंदाब्द : १९१, विक्रम सम्वत् : २०७१
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११५

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क
- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।
पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विट्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन: २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
ओ३म्-परमात्मा का नाम	२
सम्पादकीय	३
''सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास....	४-५
विचार शक्ति का चमत्कार-२....	५
ऋतस्य पंथा न तरति दुष्कृत: आध्यात्म....	६
मन की रफ्तार	७
ऋषि के कतिपय अन्य अमृतमय उपदेश	८-९
परमेश्वर का स्वरूप	१०
संसद की दीवारों के संदेश	११-१२
''गीता के जीवनोपयोगी तीन श्लोक''	१३
ईश्वर प्रणिधान	१४
सच्चा साथी कौन?	१५
महाव्याहृतियाँ	१६

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द और वर्तमान

बालक मूलशंकर सच्चे शिव की खोज में घर को त्यागकर भटकते - भटकते अन्त में गुरु विरजानन्द की कुटिया में पहुँचा। यहीं उन्हें अपनी जिज्ञासा का उत्तर मिला। मृत्यु को जीतने निकला मूलशंकर गुरु की कुटिया से वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती बनकर निकला। गुरु दक्षिणा में गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपना शेष जीवन वेद-ज्ञान, पाखण्ड - विरोध, अंधविश्वास निर्मूलन, जातिवाद का विरोध, भारत की स्वाधीनता का सूत्रापात गुण-कर्म- स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था को पुर्नस्थापित करने वाला, नारी-शिक्षा को प्रतिपादित करने वाला आदि अनेकों परोपकार के कार्यो को करते हुए अपनी जीवन-शैली मनसा-वाचा-कर्मणा एक रखते हुए न जाने कितनों के जीवन की दिशा बदल दी। उनके इन्हीं आदर्शों का अनुसरण करते हुए लाखों लोग आर्य समाज से जुड़े। अपनी जाति, वर्ण-संगठन, धन, मोह माया को त्यागते हुए लाखों लोगों ने आर्य समाज की क्रांति की मशाल को आगे बढ़ाया। जहां कहीं भी आर्य समाजी जाता, उसकी अलग पहचान से सब उसका आदर- सम्मान करते थे। अस्तु!

वर्तमान में ऐसा प्रतीत होता है कि जिन-जिन बन्धनों को तोड़कर महर्षि के अनुयायी आर्य समाज से जुड़े थे, आज उनकी सन्तानें स्वार्थवश पुन: उन्हीं बन्धनों में पकड़ती जा रही हैं। वर्णवाद, भाषावाद, पूंजीवाद आदि आर्य समाज में ही पनपने लगा है। परीणामस्वरूप आर्य समाज के सिद्धानों के साथ समझौता हो रहा है। शनै: शनै: आर्य समाज के आन्दोलन के शिथिल होने के साथ कहीं ऐसा न हो कि दीवारों में नाम आर्य समाज लिखा है और अन्दर स्वार्थी तत्व अपना लक्ष्य साध रहे हैं। आओ हम मिलकर इस स्थिति का मुकाबला करें।

- संगीत आर्य- 93235 73892

।। ओ३म् ।।

"सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास के कुछ प्रेरक प्रश्नोत्तर"

यह लेख मैंने सत्यार्थ प्रकाश के पढने की इच्छा को जागृत करने की भावना से लिखा है। अधिकतर लोगों को सत्यार्थ प्रकाश की जानकारी तो है परन्तु उसको उँचे स्तर के ज्ञात की पुस्तक समझकर पढ़ते नहीं है, समजते है कि यह पुस्तक तो विद्वानो के मतलब की है। हमारा इस के क्या लेना देना/ इस लेख में जो प्रश्न तथा उनके उत्तर ऐसी सरल व रोचक भाषा में किये गये हैं जिनको पढकर हर व्यक्ति के मन में सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न होंगी और वह "सत्यार्थ प्रकाश" को जरूर पढ़ेगा, जिससे मानवताका बड़ा उपकार होगा और मुझे पूरा विश्वास है कि यह लेख "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" बनाने में बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। प्रश्न-उत्तर इसी भाँति हैं:-

१-प्रश्नः- ईश्वर व्यापक है, वा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तर :- व्यापक है। क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता/अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का होना असम्भव है।

२-प्रश्नः- ईश्वर सकार है, वा निराकार?

उत्तर :- निराकार। क्योंकि जो सकार होता तो व्यापक नही हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म -स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोप्सा, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नही हो सकता। इससे यही निश्चित हैं कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनाने वाला कोई दूसरा होना चाहिए। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उस को संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप से आप ही अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनते के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

३-प्रश्न :- ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वा नहीं?

उत्तर :- है! परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान शब्दका अर्थ जानते हो, वैसा नहीं। किन्तु "सर्वशक्तिमान्" शब्द का सही अर्थ है कि ईश्वर अपने सब काम अर्थात उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवोंके पुण्य-पापकी यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

४-प्रश्न :-हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर जो चाहे सो करे, क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर :- वह क्या चाहता है? जो तुम कहो कि सबकुछ चाहता है और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्। चोरी, व्याचिरादि पाप-कर्म और दुःखी भी हो सकता है। जैसे ये काम ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से विरुद्ध है तो जो तुम्हारा कहना कि "वह सब कुछ कर सकता है" यह सभी नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा, वही ठीक है।

५-प्रश्न :- परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है; वा नहीं?

उत्तर :- है।

६-प्रश्न :- ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाये। क्योंकि "न्याय" उसको कहते हैं कि जो धर्मो के अनुसार न अधिक न न्यून सुख-दुःख पहुँचाता। और "दया" उसको कहते हैं कि जो अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तरः- न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है। क्यों कि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहलाती है जो पूराणे दुःखोंका छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया वह ठिक नही। क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो, उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम "न्याय" है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरूषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है। वह दया किस प्रकार हो सकती है? "दया" वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना। ओर उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

७-प्रश्नः- फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि उन दोनों का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है, इसलिये एक शब्दका रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं हैं।

उत्तर :- क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते?

प्रश्न :- होते हैं।

उत्तर :- तो पुनः तुमको शंका क्यों हुई?

प्रश्न :- संसार में सुनते हैं, इसलिये।

उत्तर :- संसार में तो सच्चा-झूठा दोनों सुनने में आता हैं, परन्तु उसका विचार से निश्चय करना अपना काम हैं। देखो! ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजनसिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौनसी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मनमें सबको सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह "दया" और बाह्य चेष्टा अर्थात सुन्यान-छेदनादि यथावत् दण्ड "न्याय" कहलाता है। दोनों का एक ही प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना।

८- प्रश्न :- ईश्वर अवतार लेता है, वा नहीं?

उत्तर : नहीं ! क्योंकि ''अज एक पात। सयर्य्यगाच्छुक्रमवायम'' ये यजुर्वेद (३४/५३ और ४०/८) के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

९-प्रश्न :- ''यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम धर्मस्य, तदात्मान सृजाम्यहम् ।। भ. गी. ४/६

श्रीकृष्ण जी कहते है कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर :- यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। हाँ! ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि ''परोपकाराय सता विभूतय:'' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

१०-प्रश्न :- ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है, वा नहीं?

उत्तर :- नहीं! क्यों कि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे कोई राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक-अधिक बडे-बडे पाप करें क्योंकि राजा तुम्हारा अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाये कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे। और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इसलिये सब कर्मो का फल यथावत देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

११- प्रश्न :- जीव स्वतन्त्र, वा परतन्त्र

उत्तर :- अपने कर्तव्य धर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

१२-प्रश्न :- स्वतन्त्र किसको कहते हैं?

उत्तर :- जिसके अधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्त करणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे मृत्यु स्वामी, और सेना, सेनाध्यक्ष को आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके भी अपराधी नही होते, वैसे ही परमेश्वर ने प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्धहो तो जीवको पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक अर्थात सुख-दु:ख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्यने शस्त्र विशेषसे किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दु:ख रुप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

खुशहाल चन्द्र आर्य
द्वारा: गोविन्द रामआर्य अण्ड सन्स 180 महात्मागान्धी रोड, (दोतल्ला)
कोलकत्ता-7 फोन : 22183825, 64505013 (ऑ) 2675 8903 (घर) (033)

विचार शक्ति का चमत्कार-२
(मनचाही वस्तु पाने का विज्ञान)

प्रिय पाठकों

'आइए, अब हम जानते हैं कि कर्मों का फल किस प्रकार प्राप्त होता है। यह ठीक उसी तरह से है जैसे कि हम कम्प्यूटर तो देख रहे हैं लेकिन उसका सोफ्टवेअर किस तरह काम कर रहा है, यह जानने की कोशिश।

१. हम सभी के दिमाग में प्रकृति का वास है। जैसे से ही हमने कुछ विचार किया प्रकृति तथास्तु कह देती है और वह विचार समयानुसार यर्थात मे तब्दील हो जाता है। प्रकृति मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा, अपना-पराया, ऊँच-नीच कुछ नहीं समझती। जैसा भी आप सोचेंगे वैसी ही घटनाए आपके जीवन में घटित होती चली जाएंगी।

२. हमारे मस्तिष्क के सब से उपरी हिस्से में ब्रह्मचक्र या सहस्त्रानार चक्र होता है। जैसे ही हम कुछ सोचते हैं, इसमें केमिकल का परिवर्तन होता है और वह रक्त के जरिये पूरे शरीर में फैला जाता है। और वहीं से हमारे भाग्य या भविष्य का निर्माण होता है।

३. जैसे ही हमारे दिमाग में कोई विचार आता है, हमारा दिमाग वैसे ही तत्व इस प्रकृति से आकर्षित करना शुरू कर देता है और वह बाते यथार्थ रूप मे हमारे जीवन में परिवर्तित होती नजर आती हैं।

४. हमारे बाह्य कर्म या हमारे रस्ते उन्हीं विचारो के अनुरुप बनते चले जाते हैं।

५. हमारे आसपास का वातावरण व परिस्थितियों अनुरुप बनती चली जाती हैं।

६. हमें अवसर पर अवसर प्राप्त होते चले जाते हैं जिन्हें हम पहचान पाते हैं और उन अवसरों को व्यवहार में लाते हैं।

७. लोगबाग एवं हमसे जुड़ने लगते हैं और हमारे लिए कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

आशा है आप उपलिखित तथ्यों पर विचार या मनन करेंगे। शेष अगले अंक में।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्ता

वेद प्रचार सप्ताह
दि. २८,२९,३०,३१
अगस्त
ब्रह्मा एवं वक्ता
आचार्य विद्याभानु शास्त्री
(जम्मु)

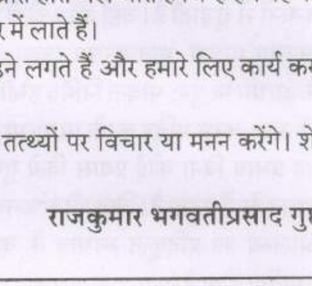

।।ओ३म्।।

ऋतस्य पंथा न तरति दुष्कृतः

आध्यात्म चिन्तन

पं. उम्मेद सिंह विशारद

ऋग्वेद यह कहता है कि सत्पथगामी के लिये सत्य बोलना और सत्कर्म करना कितना अनिवार्य है। **नास्ति सत्यातु सपरोधर्मः** अर्थात् सत्य में उत्तम कोई धर्म नहीं है। मनु महाराज जी ने उचित ही कहा है, हमारे किसी भी कथन की सार्थकता तब है, जब हमारे कर्म हमारी वाणी के अनुरूप हो। ईश्वर भक्त को भक्ति के साथ सत्कर्म करने वाला होना चाहिए, तभी ईश्वर भक्ति कहलायेगी। प्रभु का निरन्तर ध्यान से स्वच्छ हृदय होने लगता है और मनुष्य जगत में सर्वत्र परमात्मा का आभास करने लगता है।

जब कोई मन, बचन, कर्म से एक रुप हो जाता है तो वह देवत्व की ओर बढ़ने लगता है, तब वह मानव कल्याण की बात करने लगता है। जब हम **मनसा वाचा कर्मणः** एक रुप होंगे तो हमारी आत्मा की सर्व भूतहित के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर बैठेगी। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।** यह जगत तपोभूमि भी है और कर्म भूमि भी है। वेदों में इसीलिये प्रार्थना की गई है कि मेरे प्रवृत्ति मधुमय हो, मेरी निवृत्ति भी मधुमय हो, इसका तात्पर्य यह है कि यदि सत्यं शिवं सुन्दरम् की भावना हमारे मन में हो और मनसा, वाचा, कर्मणा से एक रुप होने से सफलता मिल सकती है।

मानव जीवन के अन्तःकरण की वृत्ति तीन कोटि की होती है, सात्विक, राजसी और तामसी। सात्विकी भावना ईश्वरपरक आत्मा की कल्याणकारी है। राजसी जगत के विषय भोगों की भावना है। हिंसापरक अज्ञानता से परिपूर्ण तामसी भावना है और सात्विक भावना जगत जगत के बन्धनों से छुड़ाती है। वहाँ अन्य दोनों दुःखों में बांधने वाली है। स्वभाव के अनुसार भावना, भावनानुसार इच्छा, इच्छानुसार कर्म, कर्मानुसार स्वभाव के आधार पर पुनः भावना निर्मित होती है और बुरी भावना कर्म विनष्ट होकर ही अन्तःकरण पवित्र करके परमात्मा में जोड़ती है। यह सत्य है कि कुसंग का प्रभाव बिना कोई प्रयास किये तुरन्त ही पड़ता है और सत्य संग का प्रभाव देर में पड़ता है। चित्त की चंचलता, हृदय की मलिनता, अकर्मण्यता, आलस्य का प्रतिकूल स्वभाव के कारण सत्पुरूषों का व्यक्तित्व देर से प्रभावित होता है।

जिस दिन ईश्वर, संसार, आत्मा और मानव शरीर के संबंधो की गरिमा का ज्ञान होगा, उस दिन हमें जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख शान्ति व समृद्धि चाहता है। परन्तु बदले में समाज व राष्ट्र को क्या देता है, विचारणीय है। ईश्वर, संसार, आत्मा और मानव शरीर का आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है। एक के बिना दूसरे की गणना नहीं की जा सकती है। इसलिये हमें ईश्वर, आत्मा, शरीर व समाज के साथ सामन्जस्य बनाना पड़ता है।

प्रायः हमारी सारी उम्र खाने-पीने व परिवार के पालने में ही निकल जाती है और जब आत्म बोध होता है तब यह शरीर व दिलोदिमाग साथ नहीं देता है। तब बहुत देर हो चुकी होती है। इसके लिये सतत प्रभु स्मरण सेवा भाव संयम सदाचार आदि ऐसे सद्गुण हैं, जो हमें आत्मबोध के मार्ग पर ले जाते हैं। सद्गुण प्रत्येक स्थिति में मनुष्य का कल्याण करते हैं।

माता-पिता का बच्चों का पालन-पोषण, लाड-प्यार प्राकृतिक है, जो प्रकृति कराती है, किन्तु मनुष्य अहंकार वश अपने को प्रेम करने वाला समझता है। यह प्रेम सामाजिक है। इसीलिये तो अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के बाद यह प्रेम बिखर जाता है। किन्तु जो मनुष्य अपने दायित्वों को पूरा करते हुए परमात्मा से प्रेम करता है, यह अलोकिक एवं अमृत सुख प्राप्त करने वाला प्रेम है। धन, यौवन, स्वार्थ, ज्ञान, तप, इच्छा कामना से परे है।

मनुष्य का जीवन सूर्य की तरह गतिमान है। सूर्योदय उसका जन्म है, दोपहर जवानी और सांझ वृद्धावस्था है और सभी में जीवन की कहानी के समापन का प्रतीक है, जीवन मृत्यू दोनों सत्य हैं। यह जीवन का परम सत्य है। जन्म से मृत्यू तक सुख अस्थायी नहीं रहता। किन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि वृद्धावस्था तो जीवन का सुनहरा अध्याय है। जिसने जीवन जीना सीखा है, उसके लिए वृद्धावस्था अनुभवनों से भरा जीवन होता है। जवानी में दूसरों के लिये जीता है और वृद्धावस्था में अपने कल्याण के लिये जीता है। वृद्धावस्था जीवन का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। कहा भी गया है, जवानी में सुख से जियो और वृद्धावस्था में शान्ति से जियो। मनुष्य जीवन भर शान्ति की खोज में रहता है, उसका परिणाम वृद्धावस्था में प्राप्त होता है। ज्ञान भक्ति और कर्म के विविध मार्ग यदि न बने तो शान्ति प्राप्ति के लिये एक मार्ग परमात्मा की शरण में जाने का मार्ग अहम् भाव को तिरोहित करने का है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्वयं जब ईश्वर को प्राप्त किया अर्थात् अनुभूति प्राप्त की तो वह ऋषि कहलाये। तभी तो उन्होंने संसार के प्रपन्चों से हटाने की शिक्षा कदम-कदम पर दी है। उन्होंने मनुष्य को ईश्वर की ओर मोड़ने के लिये एक अद्भुत ज्ञानवर्धक कल्याणकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिखा और उसमें ११ सम्मुलास केवल मनुष्यपन से देवत्व की ओर ले जाने के लिये लिखे हैं। आश्चर्य होता है कि, युगों बाद एक देवता ने ईश्वरीय परम्परा को स्थापित करने के लिये कितने कष्ट सहे। सम्पूर्ण संसार एक तरफ और ईश्वर भक्त ऋषि एक तरफ थे। उन्होने कहा जो हमें दीखता है, वह असत्य है और जो नहीं दीखता वह सत्य है। जो चलायमान है व अस्थिर है, परिवर्तनशील है, वह दिखता ही भर है, वास्तव में वह अपरिवर्तनशील तत्व के ही आधार पर टिका हुआ है। अचल स्थिर अपरिवर्तनशील तत्व न हो तो परिवर्तन हो ही नहीं सकता है। हर गति अगतिशीलता के कारण टिकी हुई है। इसलिए दृश्य परिवर्तनशील और अदृश्य परिवर्तनशील है। जैसे आत्मा अदृश्य है तो शरीर दृश्य है, इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पदार्थ दृश्य परिवर्तनशील हैं और उनका आधार परमात्मा के गुण अपरिवर्तनशील है।

वैदिक प्रकारक- मो०-९४११५१२०१९

मन की रफ्तार

डॉ. सम्पत सेठी

हमने अपने घर के वरिष्ठ सदस्यों के मुंह से सुना था, ''मन के हार है, मन के जीते जीत। मन की गति को न पकड़ सका, राजा संत रईस।'' जब भी रफ्तार का नाम लिया जाता है। कुछ बातें दिमाग में चली आती है। हवा की गति तेज होती है, सूर्य के प्रकाश की गति तेज होती है, ध्वनि की गति तेज होती है इन सभी गतियों की तुलना मन के रफ्तार से नहीं की जा सकती है। मन की गति को मापना संभव नहीं है। साथ-साथ हम भूखंड की ऊर्जाओं को मापने का प्रयास किया जाता है। ऊर्जा मापने के लिए वैज्ञानिकों ने कई यंत्रों का अविष्कार किया। सभी यंत्र प्रकृति, भूखंड के बारे में संभावना ही बता सकते हैं। रिजल्ट के करीब जा सकते हैं, मगर शतप्रतिशत परिणाम नहीं देते हैं। आपने टीवी और प्रिंट मीडिया में सुना और पढ़ा होगा, ''तूफान आने की संभवना है, बरसात आने की संभवना है, तेल के कुएं निकलने की संभवना है, भूकंप आने की संभवना है, सूखा-बाढ़ आने की संभावना है, अधिक ठंड या अधिक गर्मी पड़ने की संभवना है। ज्योतिष शास्त्र कहता हैं, ''गणना के हिसाब से आपकी जिंदगी ऐसा होने की संभावना है।'' वास्तुशास्त्री कहता है, ''भूखंड में संशोधन के बाद अच्छे परिणाम आने की संभावना है।।'' हर विषय संभवना ही बताती है। सच में क्या होगा, केवली भगवान और नारायण कृष्ण ही बता पायेंगे। सभी विद्याएं, विद्वान संभावनाओं की बात करते हैं। मन की गति, समय की गति दोनों का समावेश अगर आपस में कर दिया जाए असंभव कुछ भी नहीं। हमें संभावनाओं का ज्ञान हो जाए, पुरुषार्थ की गति को, मन की गति को आपस में संयोग कर दें, तब असंभव कुछ नजर नहीं आएगा और Impossible भी Possible बन जाएगा। गीता में नारायण कृष्ण ने अपने उद्‌बोधन में अर्जुन से कहा था, ''हे अर्जुन, समय गतिवान है, समय की गति पकड़ने का प्रयास मत करना। समय के साथ अपनी गति को जोड़ देना।''

आज हम पूरे हिन्दुस्तान में भ्रमण करते हैं, समय की गति को पकड़ने का प्रयास करने वाले कौन-कौन से प्रांत हैं? प्रथम नाम आपको महाराष्ट्र का मिलेगा। उसका उदाहरण आप अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अमीर हो या गरीब हो, नौकर हो या मालिक हो, कम से कम १२ घंटा एवं १६ घंटा तक कार्य करते हैं। यही कारण है, मुंबई को ''आर्थिक राजधानी'' कहा जाता है। प्रांत में रहने वाले सभी भारतीयों पर लागू होती है। समय की गति को पकड़ने का पूरा प्रयास, समय पर कार्य पूरा करने का प्रयास, समय पर पहुंचने का प्रयास देखने लायक है। केवल देखने लायक ही नहीं सराहने लायक भी है। क्यों सभी मुंबईवासी ऐसा प्रयास करते हैं? जो करते हैं, वही सफलता को प्राप्त करते हैं। मैंने आचार्यों के लेख पढ़े उनके कुछ अंश अपनी भाषा में आपके साथ बांटने का या आप तक पहुंचाने का प्रयास कर रहा हूं। मेरा यह प्रयास सार्थक होता है, तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा। आचार्य ने कहा है, ''चौबीस घंटे का दिन-रात होता है, प्रकृति अपनी नियति नहीं बदलती, चौबीस की छब्बीस या तेईस घंटे नहीं करती।'' आचार्यों ने चार तरह के मनुष्यों का वर्णन किया है। पहला-चार घंटे काम करता है और चौदह घंटे सोता है। छह घंटे आलस्य और प्रसाद में बीता देता है। ऐसा क्यों होता है? दुश्चिंताएं, ख्याली पुलाव, अज्ञात भय, दूसरा क्या करेगा, दूसरा क्या कहेगा, डर के मारे जी-हुजुरी, अपने आपको समझदार दिखाने के प्रयास में असफल हो जाता है। उसका एक साल का लक्ष्य तीन साल में पूरा होता है। दूसरा-आठ घंटा काम करता है, दस घंटा सोता है और छह घंटे आलस्य करता है। वह अपना लक्ष्य दो साल में पूरा करता है। तीसरा-बारह घंटा काम करता है, आठ घंटा सोता है और चार घंटा नित्य क्रियाएं एवं प्रमाद में निकाल देता है। वह अपना एक साल का लक्ष्य एक साल में पूरा करता है। चौथा- संत, महंत, विश्व के विशिष्ट, सफल, व्यापारी हो, अध्यात्मिक हो, समाजसेवा हो या परमार्थ के काम में जुड़े हुए हों। इनकी दिनचर्या सबसे अलग होती है। अगर आप विश्व के टॉप टेन (प्रथम दस) हस्तियों के बारे में इंटरनेट के माध्यम से पढ़ने का समझने का प्रयास करेंगे एवं दिनचार्या को अपने आप में उतारने का प्रयास करें तो संभव है कि टॉप टेन में आपका नाम भी आ जाए। निश्चित आपका नाम आएगा। भाग्यलक्ष्मी, कर्मलक्ष्मी, यशलक्ष्मी, कुल लक्ष्मी, मां भगवती आपका स्वागत करने के लिए तत्पर खड़ी हैं। आप प्रयास करके तो देखें। बिल गेट्स, फोर्ड, अंबानी और टाटा, बिड़ला की पंक्तियों में आपका नाम निश्चित लिखा जाएगा। इसके लिए आपको समय का सदुपयोग करना है, जिंदगी का एक-एक सेकेंड करोड़ों रुपए से अधिक कीमती है, अनमोल है, अनमोल समय को बेमोल में मत बेचो, बेमोल बर्बाद मत करो। समय का आप साथ देगा, समय का आप सम्मान करेंगे। प्रकृति, परमात्मा आपके सम्मान की व्यवस्था, सम्मान के कारण आपके समक्ष उपस्थित कर देंगे। सोलह घंटे काम करने वाले और छह घंटा प्रकृति एवं शरीर विज्ञान के आदेशानुसार शरीर को आराम देना या सोने का प्रयास करते हैं, तो उनका एक साल का लक्ष्य चार से छह माह में पूर्ण हो जाता है क्योंकि वो आज का काम कल पर नहीं छोड़ते। परिस्थिति एवं कठिनाइयों का सामना करते हुए आज का काम आज ही पूरा करते हैं। अपनी पूरी शक्ति परेशानियां और कठिनाइयों को अपने से अलग करने में लगा देते हैं। जो पुरुषार्थ के साथ तन कर खड़ा हो जाता है, कठिनाई एवं परेशानियां अपने आप पलायन करने लगेगी। इतना ही नहीं परेशानियां पैदा करने वाले स्वयं आपके आत्मविश्वास से परेशान हो जायेंगे।

जब टूटने लगे हौंसले तो बस ये याद रखना,
बिना मेहनत के हासिल तखतो ताज नहीं होते।
ढूंढ लेना अंधेरों में मंजिल अपनी,
जुगनू किसी रोशनी के मोहताज नहीं होते।

ऋषि के कतिपय अन्य अमृतमय उपदेश

आचार्य भद्रसेन

१. वीर्य रक्षा– वीर्य रक्षा करने में आनन्द और नाश करने में दुःख है। देखो! जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। वीर्य रक्षा की यही रीति है कि–विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग सदा पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करें।

जो तुम सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण तथा वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त न होगा।

–स०प्र०

२. भारत की उन्नति का उपाय– एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य की प्राप्ति ही भारत की पूर्णोन्नति में साधक है। कडे तथा खरे उपदेशों से जाति को जगा कर, कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट करना ही मेरे खण्डन का एक मात्र उद्देश्य है। इसी लिए मैं जाति के हित के लिए अनेक प्रकार के कष्ट, गालियाँ और विष पान आदि भी सह लेता हूँ।

–उपदेशमंजरी

३. कौन देश सौभाग्यशाली है– जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या, और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यशाली है।

– सत्यार्थप्रकाश

४. संस्कृत भाषा का महत्त्व– ईश्वर में जैसा अनन्त आनन्द है उसी प्रकार संस्कृत भाषा अनन्तानन्द है। कहिये! इस भाषा के सदृश मृदु, मधुर और व्यापक सर्व भाषाओं की जननी अन्य कौन सी भाषा है।

– उपदेशमंजरी

५. भारतवर्ष की अवनति का कारण– जब तक सब ऋषि, मुनि, राजा, महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ़कर ही स्वयम्वर विवाह किया करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यवस्था में ही पराधीन अर्थात् माता, पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आ रही है।

– उपदेशमंजरी

६. पितर और पितृयज्ञ– सुनीति, धर्म, सचाई और सच्चरित्रता आदि गुणों से अत्यन्त सहिष्णु महात्मा हुए हैं। उन्हीं को अपने तपोबल के प्रभाव से वसु, रुद्र और आदित्य आदि की पदवियाँ मिला करती थीं। ऐसे ऋषि ही सच्चे कहलाते थे, और उन का आदर सत्कार करना ही पितृ–यज्ञ कहलाता था।

– उपदेशमंजरी

७. कौन सा धर्म मानने योग्य हैं– जिस धर्म को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं, वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं है।

–स०प्र०

८. मनुष्य किसे कहते हैं– मनुष्य उसे कहना चाहिये जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरें और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हो, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण, और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति, अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहाँ तक हो सके अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना भी दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले चले जावें, परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

– स०प्र०

१०. राजा का स्वरूप– राजा उसी को कहना चाहिये जो शुभ, गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्याय, धर्म की सेवा करे, तथा प्रजाओं में पितृवत् वर्ते, और उस को पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

–स०प्र०

११.प्रजा का स्वरूप– प्रजा उस को कहते हैं, जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित, न्याय, धर्म के सेवन से राजा और अपनी सदा उन्नति ही चाहती है।

१२. वीर्यहीन मनुष्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है– जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह आदि रोग होता है, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

–स०प्र० २ समु०

१३. काम वासना जीतने का उपाय– काम वासना जीतने का यह उपाय है कि एकान्त स्थान में रहे, नाच आदि कभी न देखे, अनुचित स्वरूप का देखाना, अनुचित शब्द का सुनना और अनुनित वस्तुओं का स्मरण करना परित्याग कर देवे, स्त्रियों की ओर न निहारे, नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करे। इन उपायों से कामवासना मन्द हो जाती है, मनुष्य जितना भी वासना की तृप्ति का यत्न करता है, वह शान्त न होकर, उतनी अधिक बढ़ती चली जाती है, इसलिए विषय वासना का चिन्तन भी न करे। जितेन्द्रिय बनने के अभिलाषी को भगवान् के पवित्र प्रणव (ओ३म्) नाम का जप करते रहना चाहिये।

–श्रीम०द०

१४. वेश्या गमन से हानियाँ (युवकों को उपदेश)– सौम्य युवको! वैसे तो व्यसन सभी बुरे हैं। परन्तु वेश्या सबसे अधिक नाशकारिणी है। इस व्यसन से सुरापान की भी बान सहज में पड़ जाती है। सभ्यवेश, सभ्यभाषा, सभ्याचार आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। कुलाचार पर कठोर कुठाराघात हो जाता है। रात दिन राग–रंग में मग्न रहने से सद्व्यवहार और

सद्बुद्धि का नाश होने लगता है। ऐसा व्यसनी धर्म, कर्म से सदा दूर भागता है। वारांगना अपने वशीभूत जन के मन को कृत्रिम प्रेम से, बनावटी बातों से और हाव-भाव से सदा कामोत्तेजित ही बनाए रखती है। जिससे व्यसनी अल्प काल में ही निस्तेज, निर्वीर्य और जीर्ण, शीर्ण शरीरवाला हो जाता है। जब स्वार्थ सिद्ध नहीं होता तो वह बात तक भी नहीं पूछती।

-श्रीम०प्र०

१५. अपने शरीर को बलवान् बनाओ– खान पान की तरह व्यायाम भी नित्य करना चाहिये। बलवान् मनुष्य सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। निर्मल मनुष्य का जीवन सार रहित, रोंगों का घर और नरकधाम बना रहता है।

-श्रीम०प्र०

१६. छोटी आयु की शादी से हानियाँ– पुत्र पुत्रियों की छोटी आयु में शादी करना बहुत बुरा है। सन्तान के परित्राण के लिए इस कुरीति को अपने में से सदा के लिये निकाल दो। जैसे कच्चे खेत को काट लेने से अन्न नष्ट हो जाता है। कच्चे फल और ईख में मिठास नहीं होती। ठीक उसी प्रकार छोटी आयु में जो सन्तान का विवाह कर देते हैं, उनका वंश भी बिगड़ जाता है। सन्तान में सुख और उन्नति का सदा अभाव ही बना रहता है।

-श्रीम०प्र०

१७. द्वेषी का द्वेष करने से दूर नहीं होता– अपमान कर्त्ता का अपमान करने से उस का सुधार नहीं होता, किन्तु सम्मान देने से सुधार हो जाता है। जैसे आग में आग डालने से वह शान्त नहीं होती, ऐसे ही द्वेषी की द्वेष बुद्धि उस के साथ द्वेष करने से दूर नहीं हो सकती। जैसे अग्नि को शान्त करने का साधन जल हैं। उसी प्रकार द्वेष को मिटाने का साधन भी शान्ति धारण करना है।

- श्रीम० प्र०

१८. स्त्री सत्कार– हे मनुष्यों ! जो प्रभात वेला के समान सुप्रकाश, सुरूपवती, सूर्यकिरणों के तुल्य घर के कामों की व्यवस्था चलानेवाली, शूरवीर के समान परिश्रम से न थकनेवाली स्त्रियाँ हों, उनका निरन्तर सत्कार कर, उन्हें सदा सौभाग्य युक्त करते रहो।

- ऋ०भा० ६.६४.३

१९. गृहाश्रमी का कर्त्तव्य– गृहस्थों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धि युक्त मंगलकारी गृहाश्रमी बनकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिसे तीनों अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों।

- य०भा० ८.६

२०. गृहस्थाश्रम को कौन धारण कर सकता है– इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा, विद्या शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम, नियम और उत्तम सहायक के विना किसी भी मनुष्य से गृहस्थाश्रम धारा नहीं जा सकता।

- य०भा० ८.३१

२१. मनुष्य जीवन में कुछ भी दुर्लभ नहीं– मनुष्य शरीर पाकर उत्साह, पुरुषार्थ, सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास का अनुष्ठान करते हुए मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर, आत्मा और समाज की उन्नति करना कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

२२. राजा को कर क्यों देना चाहिये– जो राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें। नहीं तो न लें। और हम भी उनको कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिए ही राजा को कर देना चाहिये। अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं।

-य०भा० ९.१७

धर्म का मार्ग– वेद का मार्ग

संसार में रहने वाले प्रभु पुत्रों!
धर्म का मार्ग
पावन और निर्विवाद सबको सुख शान्ति सन्तोष, सम्मान दिखाने दिलाने वाला है।।
सत्य से संयुक्त
न्याय से परिपूर्ण
अच्छाई और सच्चाई की ओर
ले जाने वाला है।।
देश, जाति, वर्ग, समुदाय निरपेक्ष
भेदभाव, पक्षपात रहित
छल छद्म पाखण्ड से दूर
अज्ञान अन्धकार अन्ध विश्वास
से बचाने वाला है।।
सब के लिये समान उपयुक्त
आदिसृष्टि से प्राप्त
केवल वेद का मार्ग है,
जो कभी बदलता ही नहीं।
सूर्य, चन्द्र, हवा, पानी, अन्न के समान
अत्यन्त आवश्यक है।।
आइये इसी पर चलने का, हमसब सम्मिलित प्रयास करें।
जितने भी ग्रन्थ हमारे पुस्तकालय में प्राप्त हैं
उन सबकी शिक्षाओं, निर्देशों में जो
समानता मिलती है सब पर इसी की छाप है
बस हम
अपनाने का साहस तो करें!

सत्यदेव प्रसाद आर्यमरूता
नेमदार गंज (नवादा) बिहार

परमेश्वर का स्वरुप

प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाम्यः ।।८।।

अन्वयः- सः पर्यगात् शुक्रम्, अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम, कवि; मनीषी, परिभूः, स्वयम्भू, शाश्वतीय. समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्।

सं. अन्वयार्थः- वह परमात्मा सर्वत्र गया हुआ है, शक्तिशाली है, काया रहित है, व्रण रहित है, नस-नाडी के बन्धन से रहित है, शुद्ध है, निष्पाप है, कवि-क्रान्तदर्शी है, मन की वृत्तियों को जानने वाला है, सब ओर विराजमान रहने वाला है, स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान रहने वाला है, ऐसा जो परमेश्वर है, वह शाश्वत-काल से चली आ रही प्रजाओं को अपनी ठीक, न्याय व्यवस्था से अपने-अपने कर्मों के अनुसार नानाविध पदार्थ प्रदान करता रहता है।

अन्वयार्थः- (सः पर्यगात्) वह परमेश्वर सर्वत्र गया हुआ है, अर्थात् वह व्यापक है, (शुक्रम्) शक्तिशाली है, शीघ्रकारी है, (अकायम्) स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीरों से रहित है, (अव्रणम) व्रण-घाव आदि से रहित है, (अस्नाविरम) नसनाड़ी) के बन्धन से रहित है, (शुद्धम्) अविद्या आदि दोषों से रहित है, अर्थात् सर्वत्र सर्वदा (अपापविद्धम्) पाप से पृथक् रहने वाला, (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ-वेद रुपी काव्य का सृजन करने वाला, (मनीषी) सब की मनोभावनाओं को जानने वाला, (परिभूः) सब ओर विराजमान सब पर अपना स्वामित्त्व-प्रभुत्त्व रखने वाला, (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी सत्ता से विराजमान अनादि स्वरूप, कभी संयोग से उत्पन्न और वियोग से विनष्ट न होने वाला है। ऐसा वह परमेश्वर (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) शाश्वत् काल से अर्थात् अनादि काल से चली आ रही प्रजाओं के लिए (याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्) अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार ठीक-ठीक अर्थात् जैसे-जैसे उनके कर्म होते हैं, वैसे-वैसे उनके लिए पदार्थों का विधान कर देता है, अर्थात् उन्हें अपने-अपने कर्मानुसार सर्वविध पदार्थ प्रदान करता है।

पिछले मन्त्रों में परमेश्वर के स्वरूप का जो वर्णन किया गया है उसका यहाँ और अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्टरूप से वर्णन है। पिछले मंत्रों में यह बतलाया गया है कि वह ईश्वर सर्वदा सर्वत्र व्यापक है। कोई भी ऐसा क्षण नहीं जिसमें कि वह ईश्वर विद्यमान न हो, कोई भी तो ऐसा कण नहीं जिसमें कि वह परमेश्वर विराजमान न हो। इसलिए उसके सम्बन्ध में सदा यही कहा जाता है कि वह क्षण-क्षण में और कण-कण में रमा हुआ भगवान है। वह परमेश्वर (एकम्) एक है, अद्वितीय है, अपने आप में निराला है, सब से आला (उत्तम) है। उस जैसा न कोई दूसरा हुआ, न है, और न ही होगा। वह (अनेजत्) अचल है, स्थिर है, गति रहित है, परन्तु फिर भी वह (मनसः जीवयः) मन से भी अधिक वेग वाला है। क्योंकि वह सब जगह (पूर्वमर्षत्) पहले ही से पहुँच हुआ है। यहाँ उसको मन से अधिक वेग वाला इसलिए कहा गया है कि मन जब अपनी वृत्ति से कहीं जायेगा तो वह सर्वव्यापक होने से उससे पहले ही वहाँ विराजमान होगा। कण-कण और क्षण-क्षण में सदा बसे रहने पर भी-सर्वत्र सर्वदा विद्यमान रहने पर भी वह इन इन्द्रियों से प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय ही नहीं है। सर्वत्र व्यापक होने से वह अन्य सब दौड़ते हुओं को भी लाघ जाता है। ऐसे उस महान् सर्वव्यापक परमेश्वर के भीतर ही (मातरिश्वा अपः दधाति) वायु जलों को मेध के रूप में धारण करता रहता है या मातरिश्वा-अन्तरिक्ष में श्वास-प्रश्वास लेने वाला यह जीव अपः कर्मों को करता रहता है। वह सबको गति देता है पर स्वयं वह गति में नहीं आता। अब यदि कोई यह कहे कि गति देने के लिए गतिदाता से प्रथक् कुछ जगह होनी चाहिए, तभी तो वह गति दे सकता है। तो इसका उत्तर यह है कि परमात्मा को गति देने के लिये किसी प्रकार की हरकत करने की आवश्यकता नहीं होती और न ही उस में हरकत होती है, क्योंकि वह एक देशी नहीं, सर्व देशी है। प्रलय के बाद जब जगत् की पुनः उत्पत्ति होती है तो उस समय प्रकृति में जो एक गति पैदा होती है, जो कि उसमें एक विशेष प्रकार की हलचल उत्पन्न कर देती है, वह तो परम परमेश्वर के केवल ईक्षण (उपलब्ध वस्तु को कार्य में प्रवृत्त करने की इच्छा) मात्र का ही परिणाम है। इसलिये इस प्रकार वह सबको अपने ईक्षण मात्र से गति देता हुआ भी स्वयं सर्वदा सर्वत्र व्यापक होने से गति में नहीं आता।

वह दूर है, वह समीप भी है, वही सबके अन्दर और वही सबके के बाहर भी है। अर्थात् वह सर्वत्र है। अब जो मनुष्य सब भूतों को अर्थात् सब चराचर पदार्थों को उस आत्मा-परमात्मा में, और उस आत्मा-परमात्मा को सब भूतों, अर्थात् सब चराचर पदार्थों में

शेष पृष्ठ १२पर ....

संसद की दीवारों के संदेश

प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पहली बार संसद में प्रवेश करते समय संसद की सीढ़ियों पर सिर रखकर प्रणाम किया है। इससे संसद की गरिमा बहुत बढ़ गयी है। आशा है कि सांसद महानुभाव इस भावना और गरिमा का सम्मान करेंगे।

संसद भवन की दीवारों और लिफ्टों के गुम्बजों पर लिखे हुये संदेश के सदस्यों, सांसदों से कुछ उम्मीद करते है। संसद के इन संदेशों का चयन करने वाले पूर्व राजनयिकों के प्रति मन में श्रद्धा के भाव जग उठते हैं। आज के बहुसंख्यक सासंदों के पतनशील आचरण, स्वार्थी व्यवहारों पर विचार करने से इन आदर्श संदेशों का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। संसद भवन के प्रथम द्वार से होकर जब हम केन्द्रीय सभागार के प्रांगण की ओर चलते हैं तो प्रवेश द्वार पर भारतीय संस्कृति का एक उदात्त आदर्श निम्न श्लोक में लिखा हुआ मिलता है- **''अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम् उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।'' (पंचतंत्रम्)** इसका अर्थ हुआ कि यह अपना है और यह पराया है ऐसा विचार छोटे चित्त वालों का होता है। जो उदार चरित्रवाले होते हैं वे तो सारे विश्व को अपना परिवार समजते हैं। आज के भूमण्डलीकरण और विश्व के संसाधनों की लूट के युग में ऐसे आदर्शों का महत्त्व बढ़ जाता है।

लोकसभा सुविशाल सभागार में लोकसभा के अध्यक्ष के पीठ के पीछे दीवार पर बौद्ध युग की प्रसिद्ध सूक्ति- **''धर्म चक्र-प्रवर्तनाय''** लिखा हुआ है इसका अर्थ हुआ कि सांसदों को धर्म चक्र के निर्माण के लिये प्रयत्नशील बने रहना चाहिये। इस सूक्ति को देखते हुये हम संसद के सदस्यों को पंथ निरपेक्ष होने की सलाह तो सोच सकते हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि हमारे संसद का आदर्श धर्म निरपेक्ष नहीं है, बल्कि सम्प्रदाय निरपेक्ष है। संसार में अनेकों पंथ हैं- शैव, शाक्त, वैष्णव आदि हिन्दुओं के सम्प्रदाय हैं, शिया, सुन्नी आदि मुसलमानों के सम्प्रदाय हैं, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट आदि ईसाईयों के सम्प्रदाय हैं, जैन, बौद्ध, पारसी, सिक्ख सभी सम्प्रदायों में ही परिगणित हैं। इनके प्रति संसद का निरपेक्ष समाजन भाव होना ही इष्ट है।

धर्म तो मानव समाज को, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को धारण पालन करता है **''धारणाद् धर्म मित्याहु:।।''** कहा गया है। जिस आचरण से सम्पूर्ण विश्व मनुष्य पशु, पक्षी, प्राकृतिक संसाधन सभी का धारण, पोषण हो वह धर्म कहलाता है। मनु महाराज ने कहा है- **धृति: क्षमा दमोऽस्तेयम् शौच विन्द्रिय निग्रह:। धीर विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं।।** इसी के साथ अहिंसा और जोड़ देने से धर्म के ग्यारह लक्षण हो जाते हैं। राज्यसभा के एक प्रवेश द्वार पर धर्म की व्याख्या लिखी हुयी है। **अहिंसा परमो धर्म:**। राष्ट्रपिता गांधीजी की सभाओं में गाया जाता था- वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे। आज के युग में हमारी संसद में जो जबर्दस्ती से अपनी बात मनवाने का प्रयास होता है।

संसद की दीवारों पर जहां भी भारत का राजचिन्ह अंकित है वहाँ सर्वत्र लिखा हुआ है- **''सत्यमेव जयते''** इसका भाव हुआ कि सांसदों का कर्त्तव्य है कि वे सत्य की जीत की चेष्टा करें। यह पूरा वाक्य है- **''सत्यमेव जयते नानृतम्''**, ऋत् का अर्थ होता है उचित अनृत का अर्थ होता है अनुचित। भाव यह हुआ कि जो सत्य अनृत है, अनुचित है उसकी जीत की चेष्टा नहीं होनी चाहिये। उदाहरण के लिये स्कैण्डल होते हैं। घूस का बाजार सर्वत्र गर्म रहता है चोरी, भ्रष्टाचार होते हैं इसलिये उनकी सत्ता तो है पर वे अनुचित है। सांसदों का कर्तव्य है कि वे अनुचित का समर्थन न करें। आज के युग में हमारी संसद में उचित अनुचित का विचार किये बिना पार्टी और नेताओं के समर्थन में बहुत कुछ होता रहता है। कुछ दिनों पहले राष्ट्रमण्डल के खेलों का स्कैण्डल, २जी का मामला, कोलगेट का स्कैण्डल, सभी सत्य की निर्मम हत्या है। सत्यमेव जयते का संदेश इस तरह के आचरण को रोकता है।

राज्यसभा के एक प्रवेश द्वार पर लिखा हुआ है- **सत्यम् वद् धर्मचर**। यह तैतृीय उपनिषद का वचन है। इसका सुस्पष्ट संदेश है कि संसद सत्य बोलें और धर्म का आचरण करें। हम यह देख रहे हैं कि धर्म के आचरण की अनुशंसा अनेक बार की गयी है। राज्यसभा के एक और प्रवेशद्वार पर लिखा हुआ है- **''एकं सत् विप्र बहुधा वदन्ति** (ऋग्० १।१६४।४६)। ऋग्वेद में तो यह उक्ति परमेश्वर के सम्बन्ध में है किन्तु यहां संसद में इस उल्लेख का आशय यह समझ में आता है कि देशहित, देश की सुरक्षा, देश का बहुमुखी विकास सभी सदस्यों का साझा सत्य है और सभी सदस्य मिलजुल कर आपसी समन्वय से इस सत्य को पाने का प्रयास करें। एक और प्रवेश द्वार पर भगवत् गीता का निम्न वाक्य लिखा हुआ है- **''स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:''** (गीता-१८,४५) संसद का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्म का, कर्तव्यों का पालन करते हुए संसद के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। आज हमारे बहुदलीय प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल स्वदेश के स्वार्थ को भुलाकर दलीय स्वार्थो में उलझ जाते हैं। कई बार तो सदस्यों के आपसी नोंक झोंक में लड़ाई हो जाती है। संसद के ये वाक्य दलीय स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय स्वार्थ की अनुशंसा कर रहे हैं।

संसद की प्रथम लिफ्ट के गुम्बद पर महाभारत का निम्न श्लोक अंकित है-

''न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा:, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मो न सो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यम् न तत् यत् छलमभ्युपैति ।।''

अर्थात् वह सभा या संसद, संसद नहीं होती जिसने वृद्ध, वरिष्ठ ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध अर्थात् ज्ञानी और अनुभवी लोग न हों। वे वरिष्ठ वृद्ध जन भी नहीं है जिनके वक्तव्य राष्ट्रधर्म और राष्ट्रहित में न हो, राष्ट्र धर्म भी ऐसा हो जिसमें सत्य की रक्षा होती हो और सत्य भी ऐसा हो जिसमें

छल-कपट भरा न हो। इस संदेश का आशय यह है कि हमारे राष्ट्र धर्म, हमारी राजनीति जितना पारदर्शी हो, हमारे राष्ट्र धर्म में जितना छल कपट कम होगा उतना ही हमारे राष्ट्र और हमारी संसद की गरिमा बढ़ेगी।

लिफ्ट क्रमांक दो के गुम्बद् पर मनुस्मति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है-

''सभा वा न प्रवेष्टव्या, वक्तव्यम् वा समंज्जसम्।
अब्रुवन्, विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्मिषी।।'' (मनु. ८/१३)

यह आदेश सभासदों को उनके आचरण की गरिमा के प्रति सतर्क करता है। इस श्लोक का भावार्थ यह है कि सभासद सभा में प्रवेश न करें, यह तो उनकी इच्छा पर है (हम यह समझते हैं कि जब कोई संसद का सदस्य बन जाता है तो वह संसद में प्रवेश कर चुका, उसे अनुपस्थित होने का अधिकार नहीं है) सभासद जब संसद के सदस्य बन चुके तो उन्हें राष्ट्रधर्म के अनुकूल ही बोलना चाहिये। जो सदस्य संसद में बोलेगा ही नहीं या झूठ बोलेगा वह पाप करेगा। हम पिछली लोकसभा के राष्ट्रमण्डलीय खेलों, २जी के घोटाले और कोलगेट के घोटाले के प्रसंग में देख चुके हैं कि पिछली संसद में कैसे-कैसे छल हुये हैं।

लिफ्ट क्रमांक तीन पर लिखा हुआ है-

''दया मैत्री च भूतेषु दानम् च मधुरा च वाक्।
न ही दृशम् संवननं त्रिपुलोकेषु विद्यते।।'' महाभारत (विदुर नीति)

इसका भाव यह है कि प्राणी मात्र पशु-पक्षी मनुष्य आदि सबके प्रति दया, प्राणी मात्र से मित्रता, मधुर वचन और दान देने की प्रवृत्ति (केवल धन दान नहीं या भूमिदान ही नहीं, बल्कि श्रमदान, विद्यादान, आदि) संसार में दुर्लभ है। इस सूक्ति का यह आशय है कि सभासद, जनप्रतिनिधि इन मानव गुणों से अपने को परिपूर्ण बनाये रखे।

लिफ्ट क्रमांक चार पर शासक के राजधर्म पालन का मार्गदर्शन करने वाला शुक्रनीति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है-

''सर्वदा स्यान्नृपः प्राज्ञः, स्वमते न कदाचन।
सभ्याधिकारिप्रकृति-सभासत्सुमते स्थितः।।'' शुक्रनीतिः (२।३)

इसका आशय यह है कि हमारी कार्यपालिका, प्रधानमन्त्री और उनके मन्त्रिमण्डल के सदस्य विद्वान् हों, किन्तु अपनी बात पर हठपूर्वक अड़े न रहें। उन्हें सभासदों के विचार और परामर्श से निर्णय लेना उचित है।

संसद भवन के इन संदेशों के परिप्रेक्ष्य में हमारा हृदय उन अपने पूर्व पुरुषों की सूझ-बूझ पर श्रद्धा से भर उठता है। आज के संसद सदस्यों के अनेक बार अनुचित आचरणों से और मन्त्रिमण्डलीय अनुचित निर्णयों को देखते हुये इन संदेशों का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है।

''ईशावास्यम्''
पी-३०, कालिन्दी हाऊसिंग स्टेट, कोलकाता-८९
फोन: ०३३-२५२२२६३६, ९४३२३०१६०२

पृष्ठ १० से चालू....

देखता है तो वह फिर घृणा-द्वेष और की बात तो दूर रही, उसमें तो फिर सब संसार के प्रति एक अनूठा प्यार सा उमड़ पड़ता है, जो इस उपनिषद् की अपनी प्रथम मुख्य देन है।

इतना ही नहीं, जब साधक धीरे-धीरे सबके भीतर बाहर सर्वत्र सब जड़-चेतन पदार्थों से ऊपर उठकर उस एक आत्मतत्त्व-उस एक परमात्मतत्त्व को देखने लगता है- अनुभव करने लगता है, तो फिर उसमें सबसे सर्वत्र प्रेम करते हुए भी मोह और शोक नहीं रहता। क्योंकि तब वह उस एक अमृतस्वरूप ब्रह्मतत्त्व को अपने भीतर-बाहर, आगे-पीछे, दायें-बाँयें, नीचे-ऊपर, सर्वदा सर्वत्र अनुभव करते हुए सबसे व्यवहार करने लगता है। इस प्रकार इसी महान परमेश्वर के ही स्वरूप का-गुणों का इस अगले मन्त्र में भी बखान किया गया है।

वह परमेश्वर सर्वत्र गया हुआ है, सर्वत्र परिपूर्ण है, शक्तिशाली है, काया रहित अर्थात् निराकार है, काया-शरीर रहित होने से व्रण-घाव और नस-नाड़ियों के बन्धन का तो फिर उसमें प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वह शुद्ध है- पवित्र है, पाप उसको बीन्ध नहीं सकता। वह कवि है-ज्ञानी है-सर्वज्ञ है, इसलिए वह हमारे मन में उठने वाली प्रत्येक वृत्ति तक को भी जानता है। वह परिभू-सब ओर विराजमान हुआ-हुआ सब पर अपना प्रभुत्व रखता है। वह स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान रहने वाला, अन्य सबको उत्पन्न करने वाला है। वह सब अनादि काल से चली आ रही प्रजाओं को जैसे-जैसे उनके कर्म होते हैं, अपनी न्याय व्यवस्था ने वैसे-वैसे उनको वह-वह फल प्रदान करता रहता है।

इन उपर्युक्त मन्त्रों के आधार पर सभी मनुष्यों को अपने दिल में यह बात अच्छी तरह बैठा लेनी चाहिए कि वह परब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, सबके भले-बुरे कर्मों को देखने वाला है। कर्मों की बात तो क्या कहें, वह तो मनीषी होने से सबके मन में भी आए हुए भले-बुरे विचारों को जानने वाला है। अतः कोई भी हमारा ऐसा कर्म नहीं हो सकता, कोई भी हमारी ऐसी वृत्ति नहीं हो सकती जिसको कि हम उसकी दृष्टि से बचा सकें, और फिर वह हमारे ही उन उत्तम-अनुत्तम-उन भले-बुरे सब क्रिया-कलापों के आधार पर ही तो हमें अपनी अनुपम न्याय व्यवस्था से उत्तम अनुत्तम फल प्रदान करता रहता है। इसलिए हमें उनकी छत्र-छाया में विद्यमान रहते हुए, उसकी ही आज्ञानुसार सदा उत्तम ही कर्म करते रहना चाहिए, ताकि उनके परिणाम में हमें उत्तम ही फल सदा प्राप्त हो।

॥ ओ३म् ॥

"गीता के जीवनोपयोगी तीन श्लोक"

मैंने डॉ. महेश विद्यालंकार द्वारा लिखित "सरलगीता ज्ञान" शीर्षक नामकी पुस्तक पढ़ी। पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। यह पुस्तक केवल पठनीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय भी है। डॉ. जीने इस पुस्तक में गीता के मुख्य मुख्य बिन्दुओं को बड़ी सरल भाषा में समझाया है। जिसको एक साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। डॉ. जीने इस पुस्तक को लिखकर मानव मात्र का बड़ा कल्याण व उपकार किया है। गीता ज्ञान केवल आदर्श ज्ञान ही नहीं बल्कि जीवन के पग-पग पर काम आने वाला ज्ञान है। इस लिए इस पुस्तक को हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए ताकि वह अपने जीवन को सफल बना सके/मैंने इस पुस्तक को सरसरी नज़र से पूरी पढ़ी है। वैसे तो गीता के सभी श्लोक जीवन में काम आने वाले है, उनमें भी मुझे तीन श्लोक इतने अधिक पसन्द आये जिन को जीवन में उतारने से जीवन केवल सफल ही नहीं बल्कि जीवन को उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर बढ़ाते हुए जीवन को सार्थक ...... भी बना सकते हैं। ये तीनों श्लोक एक दूसरे के पूरक है और जीवन केलिए अति उपयोगी भी है। श्लोक इसी भाँति हैं।

१- योगस्थः कुरू कर्माणि, त्यक्त्वा संगं धनञ्जयः:- हे अर्जुन ! संसार में रहते हुए अपने धर्म तथा कर्तव्य को निभाते हुए अपने आत्मज्ञान को जागृत रखते हुए, अपने जीवन - लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते चलो। कठिनाइयों से घबराओ नहीं, डरो नहीं। जीवन का ही नाम संघर्ष है। संघर्ष से डरते हैं, वे कायर कहलाते हैं। गीता संसार से भागने की बात नहीं कहती है। वह तो कहती है- भागो नहीं जागो, ज्ञानपूर्वक, नियतपूर्वक तथा त्यागपूर्वक संसार का भोग करो और घर गृहस्थी में रहते हुए ज्ञान, कर्म और उपासना को पकड़े रहो। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से मानव को जीवन-मुक्त होने का सन्देश दिया है। गीता जीने की कला सिखाती हैं।

गीता प्रेरणा देती है- सच्चा इन्सान वही है जो सच्चाई व ईमानदारी के रास्ते पर चलता हुआ हर परिस्थिति में अपने को सन्तुलित बनाए रखता है और अपने धर्म और कर्म नही छोड़ता है।

२-यज्ञार्थात् धर्मणोड न्मत्र लोको डयं कर्मबन्धनः:- जो कर्म किए जाएँ, वे यज्ञार्थ व परोपकार के लिए हों और भगवान को समर्पण करके करें। तभी इन कर्मो में अनासक्ति भाव आयेगा, स्वार्थ-भाव छूटेगा और परमार्थ भावना जगेगी। ऐसात्याकि दुनिया में रहता हुआ, सारे काम, धन्धे सम्भालता हुआ भी अध्यात्मिक व्यक्ति है तथा साधु व त्यागी है। परोपकार एवं त्याग-भावना से किए हुए सभी कार्य "यज्ञ" कहलाते है। जो भी अच्छे कर्म है, वे सभी यज्ञ हैं। सृष्टि में परमात्मा का अखण्ड यज्ञ चल रहा है।

यज्ञ की भावना से सृष्टि में खुशहाली बनी रहती है। जो मनुष्य स्वार्थभाव से उपर उठकर कर्म करते हैं, वे कर्म उनके लिए बन्धन नहीं बनते है। कर्म- बन्धनों से ही मानव को सुख दुःख मिलता है। कर्म बन्धन से छूटना ही मुक्ति कहलाता है। अंहकार बुद्धि से किए हुए कर्म व्यक्तिको बन्धन में डालते हैं। गीता का उपदेश:-

३-लिप्य ते न सपापेन पद्म पत्र भिवाम्भसा:- मनुष्य को दुनिया में ऐसे रहना चाहिये जैसे पानी में कमल रहता है। पानी जितना ऊपर चढ़ता जाता है, कमल उतना ऊपर उठता जाता है। पत्ते पर पानी नहीं टिकने देता है। गीता का यही जीवन -दर्शन है। गीता "कमलवत्" जगत् में रहना सिखाती है। दुनिया में रहो, मगर उसमें फँसो नहीं। बाजार से गुजर आओ मगर बजार के लुभवने-सुधवने आकर्षण तुम्हें खींच न पायें। संसार के भोग पदार्थ आकर्षण, धन-दौलत और घर परिवार आदि में इतने मत डूब जाओ कि अपना स्वरूप तथा लक्ष्य ही भूल जाओ। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं- "यह संसार तुम्हारे भोग के लिए है, पर तुम्हारा नहीं है। तुम इस जगत के माली हो, मालिक नहीं हो। यह जगत तुम्हें कुछ समय के लिए मिला है। एक दिन तुम्हें इस को छोड़ना होगा। यदि छोड़ने का भाव मन में बनाये रखोगे तो छोडते हुए दुःख, कष्ट व परेशानी न होगी। दुःखी, परेशान व बेचैन वही लोग होते हैं जो अज्ञान-वश संसार को ही सब कुछ समझ लेते हैं। वे जगत् को पाना और भोगना ही जीवन का लक्ष्य बना लेते है।

आज दुनिया धर्म-कर्म, उद्देश्य तथा भगवान् को भूलकर सुख-साधनों और धन-दौलत आदि के लिए पागलों की तरह दौडी जा रही है। इसीलिए दुःखी अशान्त व परेशान है। भोग पदार्थो का कोई अन्त नहीं हैं। वर्तमान जगत् में भोग की चीजों का जाल बिछा हुआ है। आमआदमी इन भोगों को पाने तथा भोगने के लिए नशे एवं पागलपन में दौड़ा जा रहा है। अच्छी दौड़ लगी है। हर आदमी जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक भोगने व संग्रह की चाह में भाग रहा है। आज जो धन कमाया व इकट्ठा किया जा रहा है, उसके पीछे इन्द्रियों से भोगों की ललक है। भोगों से जो रोग उत्पन्न होंगे, उन रोगों में अधिकांश धन खर्च हो रहे हैं।

गीता सावधान करती हुई चेतावनी देती है कि आज तक संसारिक भोग-पदार्थो और सुविधाओं आदि से कोई भी तृप्त व सन्तुष्ट नहीं हुआ है। जितना मनुष्य भोगों को भोगता जाता है, उतनी ही भोगों की प्यास बढ़ती जाती है। जलती, हुई आग में जितना घी डालते जायेंगे, उतनी ही आग और तेज होती जायेगी और जितने भोगों को भोगते जायेंगे उतनी ही अतृप्तिव अशान्ति और बढ़ेगी। यह अटल नियम है। भगवान् श्री कृष्ण कहते है- "संसार के पदार्थो का इतना ही उपभोग और उपयोग करो, जितनी जरूरत है अधिक भोग मनुष्य को पतन की ओर ले जाते हैं और ये आत्मिक बल को क्षीण कर देती हैं। भोग-पदार्थ इन्द्रियों की शक्ति कमजोर बना देतीं है। इन्हीं के कारण अनेक प्रकार के रोग शरीर को घेर लेते हैं। मनुष्य असमय में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ तथा इच्छा एँ कम से कम रखता है। वह उन्हीं साधन -सुविधाओं व भोग-पदार्थों का संग्रह करता है जो उसके जीवन और उद्देश्य में सहायक हैं। बाकी को छोड़ देता है।

गीता का स्पष्ट चिन्तन है कि भोग पदार्थो, धन दौलत, सुख-सुविधाओं आदि के पीछे सब कुछ भुलाकर पागलों की तरह मत दौड़ो। यह माया व भोग पदार्थ तुम्हें ठग लेंगे। जो भी इन के पीछे दौड़ा, वही अन्त में निराश होकर लौटा। ये चीजें समाप्त नहीं होती, परन्तु जीवन समाप्त हो जाता है। माया-मोह का कोई अन्त नहीं है। इसे जितना फैलाते जाओ, यह और फैलता जाता है। जैसे चूल्हे में कितनी भी लकडियां डालते जाओ, कभी चूल्हे का पेट नहीं भरता है। ऐसे ही माया के लालची और भोगो के दास व्यक्ति कभी तृप्त व सन्तष्ट नही होते हैं। ऐसे व्यक्ति सारा जीवन व्यर्थ गवाँ जाते हैं। जब ठोकर लगती है, आँख खुलती है, तब तक जीवन बहुत आगे निकल चुका होता है। गीता का इस बारे में यही संक्षिप्त सार और सन्देश है।

योग साधनों का उतना ही संग्रह व इच्छाएँ करो, जितनी जीवन के लिए बहुत जरूरी है। जितनी कम इच्छाएँ तथा जीवनकी जरूरतें कम होंगी, उतने झंझट व संकट कम होंगे। जो साधन साध्य में बाधक बने, उन्हें तुरन्त छोड़ने में ही कल्याण है। जीवन का साध्य तो संसार में रहते हुए अपने धर्म-कर्म का निर्वाह करते हुए आत्मज्ञान को प्राप्त करके प्रभु - सान्निध्य प्राप्त करना है। इन जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में जो भोग पदार्थ साधन-सुविधाए, मित्र-साथी आदि सहयोगी बनें, उन्हें अपना लो, बाकी को छोड़ते व उनके प्रति तटस्थ भाव अपनाने में ही कल्याण है।

खुशहालचन्द्र आर्य
द्वारा: गोविन्दराम आर्य अण्ड सन्स, १२० महात्मा गान्धी रोड,
(दोतल्ला) कोलकत्ता - ७००००७
Phone : २२१८ ३८२५, ६४५० ५०१३
Off. : २६७५ ८९०३ (Resi.) (०३३)

ईश्वर प्रणिधान

ज्ञानेश्वर आर्य (एम. ए.)

ईश्वर-प्रणिधान की परिभाषा-

ईश्वर में भक्ति विशेष-अर्थात् ईश्वर से अधिक प्रिय किसी को नहीं मानना, ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल ही आचरण करते हुए, प्रत्येक कार्य को ईश्वर को समर्पित करना और उसका लौकिक फल= (धन, सम्मान आदि) न चाहना 'ईश्वर-प्रणिधान' कहलाता है।

ईश्वर-प्रणिधान का फल-

ईश्वर को अपने अन्दर-बाहर उपस्थित मानकर तथा 'ईश्वर मुझे देख, सुन, जान रहा है' ऐसा समझकर सम्पूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्ति की समाधि शीघ्र ही लग जाती है।

ईश्वर प्रणिधान की विधि व अन्य निर्देश-

(१) जिस ईश्वर के समर्पित होना है, उसके स्वरूप (=गुण, कर्म, स्वभाव) को अच्छी प्रकार समझना चाहिए, जिससे ईश्वर के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति या संशय न रहे। वेद, दर्शन तथा उपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय -श्रवण इसमें बहुत सहायक होता है।

(२) ''मेरे पास जो शरीर, धन, बल, विद्या आदि साधन विद्यमान हैं, इन सब का निर्माता, पालक, रक्षक-स्वामी ईश्वर है, मैं नहीं हूँ, मैं इन सब का प्रयोक्ता मात्र हूँ।'' इस विषय पर चिन्तन करके निश्चय करना चाहिए।

(३) ''ईश्वर प्रदत्त इन शरीर, धन आदि सब साधनों का प्रयोग, मैं ईश्वर की आज्ञा के अनुरुप (=वेद तथा ऋषिकृत ग्रन्थों के निर्देशानुसार) ही करूंगा, स्वेच्छा से नहीं'' ऐसा भी संकल्प करना चाहिए।

(४) शरीर, बुद्धि, बल, धनादि समस्त साधनों का प्रयोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही करना चाहिए, लौकिक उद्देश्य-धन, मान, प्रतिष्ठा, यश आदि की प्राप्ति के लिए नहीं करना चाहिए।

(५) शरीर, वाणी तथा मन से कार्य को करते हुए मन में यह भावना बनानी चाहिए कि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी होने के कारण मेरी प्रत्येक क्रिया को जान रहा हैं। मैं कभी भी, कहीं भी, किसी भी क्रिया को उससे छिपा नहीं सकता, जब ईश्वर जान ही रहा है, तो क्यों न मैं अपनी क्रियाओं को उसके सामने रखकर करूँ? ऐसा विचार कर साधक स्वयं को तथा अपनी समस्त क्रियाओं को ईश्वर को समर्पित कर देवे।

(६) ईश्वर प्रणिधान करने वाले योगाभ्यासी को मन से ऐसा विचार भी बनाना चाहिए कि ''में ईश्वर में डूबा हूँ और मुझ में भी ईश्वर है- अर्थात् मैं उसमें हूँ और वह मुझ में है।''

(७) ईश्वर प्रणिधान करने वाले साधक को अपने आपको अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनाये रखना चाहिए अर्थात् मन इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण करके आवश्यकता अनुसार ही लौकिक व्यवहारों को करना चाहिए।

(८) ईश्वर प्रणिधान करने वाला साधक अपने व्यवहारों को राग-द्वेष आदि दोषों से रहित= निष्काम भावना से करे। किसी कार्य में सफलता न मिलने पर या बाधा उपस्थित होने पर मन में शान्ति, प्रसन्नता, सन्तुष्टि की स्थिति बनाये रखे। मन में किसी भी प्रकार का क्षोभ, चंचलता, शोक, चिन्ता आदि उत्पन्न न करे। इस हेतु उसे घोर तपस्या करनी पड़ती है।

(९) बार बार चिन्तन करके योगाभ्यासी को ''संसार के समस्त उत्पन्न पदार्थ अनित्य हैं तथा इन पदार्थों से मिलनेवाला सुख क्षणिक व दु:खमिश्रित है'' ऐसा निश्चय करना चाहिए। ऐसा करने से उसके मन में इन पदार्थों के प्रति तृष्णा नष्ट हो जाती है और ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा व रूचि बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति ईश्वर प्रणिधान भी अच्छे स्तर का कर सकता है। क्योंकि वैराग्य के बिना ईश्वर में प्रेम नही होता। और ईश्वर के प्रति प्रेम हुए बिना ईश्वर प्रणिधान नहीं बनता।

(१०) प्रारंभ में नये साधक को शान्त एकान्त स्थान पर आसन लगाकर, आँखे बन्द करके ईश्वर-प्रणिधान करने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास होने पर वह आँखें खुली रखकर और भीड़ भरे स्थान में भी ईश्वर प्रणिधान करने में सफल हो जाता है।

(११) साधक को दिनभर लौकिक क्रिया-व्यवहारों को करते हुए भी साथ-साथ ईश्वर प्रणिधान की स्थिति बनाये रखनी चाहिए। इसके लिए पहले स्थूल कार्यों यथा-भ्रमण, व्यायाम, स्नान, भोजन करना, बर्तन-कपड़े-मकान धोना आदि को करते हुए ईश्वर प्रणिधान करने का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि इन कार्यों को करते हुए अपेक्षाकृत कम एकाग्रता की आवश्यकता रहती है।

(१२) जब स्थूल कार्यों में ईश्वर-प्रणिधान अच्छी प्रकार से बनाये रखने का अभ्यास हो जाता है, तब फिर सूक्ष्म कार्यों में तथा पढ़ना-पढ़ाना व्याख्यान देना इत्यादि को करते हुए भी ईश्वर-प्रणिधान का अभ्यास करना चाहिए।

(१३) किसी कार्य को करते हुए साथ-साथ ईश्वर प्रणिधान नहीं किया जा सके, तो उस कार्य को करने से पूर्व मन ही मन ईश्वर का विचार करके निम्न वाक्यों से उसकी आज्ञा लेनी चाहिए ''हे परमेश्वर। में अमुक कार्य को प्रारंभ करने जा रहा हूँ। इस कार्य की सिद्धि के लिए मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। मुझे सामर्थ्य, उत्साह व प्रेरणा प्रदान करके मेरी रक्षा करें, जिससे मैं कोई अनिष्ट चिन्तन न करूँ।'' जब कार्य सम्पन्न हो जावे तब पुन: ईश्वर का स्मरण करके उसका इन शब्दों में धन्यवाद करे कि ''हे प्रभो ! आपकी कृपा तथा सहायता से मैंने यह कार्य पूरा किया है, मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। मुझे इस कार्य का कोई लौकिक फल (=धन. सम्मान आदि) नहीं चाहिए। यह मैंने केवल कर्तव्य भावना से किया है।।''

उपर्युकत निर्देश के अनुसार प्रयास करने पर योगाभ्यासी को 'ईश्वर-प्रणिधान' विषय में अवश्य ही सफलता मिलती है।

सच्चा साथी कौन?

डॉ. मुमुक्षु आर्य

१. शरीर सहित संसार की सभी वस्तुएँ और व्यक्ति हमारे साथ (पास) पहले नहीं थे, अब हैं आगे फिर भी नहीं रहेंगे। अत: ये हमारे सदा के सच्चे साथी कभी नहीं हो सकते। हम (आत्मा) कालातीत अजर अमर हैं, परमात्मा भी ऐसा ही है, और वही हमारा सच्चा हितैषी भी है। अत: वही परमात्मा हमारा सदा का सच्चा साथी है, अन्य कोई नहीं।

२. संसार की जो भी वस्तु हम ग्रहण करते हैं, वे सभी परिणामी, बूढ़ी, वासी, जीर्ण-शीर्ण, टूटने-फूटने या परिवर्तित होने वाली हैं। जबकि हम (आत्मा) ऐसे नहीं हैं। अत: परमात्मा ही हमारा सदा का सच्चा साथी है।

३. सांसारिक विषय-वस्तुएँ अज्ञ (ज्ञान रहित) हैं, वे हमारे हिताहित को नहीं जानती। अत: वे हमारी सदा की सच्ची साथी नहीं हैं।

४. सांसारिक विषय- वस्तुएँ अपने आपमें अचेतन जड़ हैं और जड़ पदार्थ अपने आप किसी के लिये कुछ भी करने में असमर्थ हैं। फिर वे सदैव के लिये हमारे सच्चे साथी कैसे होंगे?

५. सांसारिक विषय-वस्तुएँ आसक्ति, कामना, कालुष्य, तृष्णा, रागद्वेष आदि असुन्दर, अहितकर भावों को बढ़ाते और सुन्दर, सुगुण सुयश को नष्ट करते हैं। फिर वे हमारे सदा के सच्चे साथी कैसे बन सकेंगें?

६. संसार के विषय वस्तुएँ और इनकी सामग्री-साधन हमें बाहर से, दूर से, पृथक् से येन-केन प्रकारेण लेने पड़ते हैं। कभी ये नहीं मिलें तो दु:खी रहना पड़ता हैं, अत: ये हमारे सदा के सच्चे साथी नहीं।

७. इन सांसारिक विषय वस्तुओं का सम्बन्ध हम (आत्मा) से न होकर प्राय: हमारे ही तन मन से होता है और इनसे तन-मन की ही क्षणिक तृप्ति होती है, हमारी नहीं। अत: ये हमारे सदा के सच्चे साथी नहीं हो सकते।

८. सभी सांसारिक विषय वस्तुएँ और उनकी सहायक सामग्री साकार हैं और हम (आत्मा) निराकार हैं, अत: साकार वस्तु निराकार की सदा सच्ची साथी नहीं हो सकती। आत्मा और परमात्मा दोनों निराकार है, अत: परमात्मा ही जीवात्मा का सच्चा साथी है।

९. सांसारिक विषय वस्तुएँ पंचभूतों से उत्पन्न होने या बनने वाली हैं और आत्मा अर्थात् हम किसी तत्त्व से मिलाकर बनने, उत्पन्न होने वाले नहीं है। अत: ऐसा ही परमात्मा हमारा सदा का सच्चा साथी है।

१०. सांसारिक विषय वस्तुएँ हमें सर्वत्र और सर्वकाल में उपलब्ध होने वाली नहीं है। अत: ये हमारी सदा की सच्ची साथी नही हो सकती, जबकि ईश्वर हमें सर्वत्र सदैव प्राप्य है अत: वही सच्चा साथी है।

११. सांसारिक विषय- वस्तुओं में देखने, सुनने, जानने की शक्ति नहीं होती। अत: जब वे हमें समझती ही नहीं तो वे हमारा सच्चा हित भी नहीं कर सकती।

१२. सांसारिक विषय वस्तुओं के सेवन से हम (आत्मा) अपवित्र और कुसंस्कारी बनते हैं। अत: अपवित्र अशुद्ध करने वाली होने से वे हमारी सदा की सच्ची साथी नहीं बन सकती।

१३. अध्यात्म (आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी) ज्ञान हमारी आन्तरिक भूख-तृषा को शान्त करता है जबकि सांसारिक विषय वस्तुएँ आत्मा को भूखा, अशान्त, रोगी और पतित बना कर नरक में डुबा देती हैं। फिर वे हमारी सच्ची साथी, हितकारी कैसे हुई?

१४. पंच भूतात्मक होने से इन्द्रियों का झुकाव (उन्मुखा) सांसारिक विषय वस्तुओं की ओर प्राय: रहता है। अत: वे आत्मिक उन्नति में बाधक होने से हमारी सच्ची साथी नहीं बन सकती। केवल ईश्वर ही आत्मा का सच्चा साथी है।

१५. जिन सांसारिक विषय-वस्तुओं के लेने, देने और भोगने से हम दु:ख सागर में जा डूबते है। तब वे हमारी सच्ची साथी कैसे बन सकती हैं, अर्थात् कभी नहीं।

१६. सांसारिक विषय-वस्तुओं की भोगविद्या को न जानने से हम जन्म-जनमान्तर तक के लिये घोर-संकट में पड़ जाते हैं, अत: वे हमारी सच्ची साथी नहीं हैं।

१७. सांसारिक विषय- वस्तुएँ स्वनियन्त्रित न होकर सर्वथा पराधीन होती हैं, अत: पराधीन वस्तु कभी भी किसी की सदैव सच्ची साथी नहीं हो सकती।

१८. सभी सांसारिक विषय वस्तुएँ अनेकत्व वाली हैं। वे अपने अनेकत्व के कारण हमें एकात्व (स्थिरता एकात्मता) के साथ सहयोग नहीं दे सकती, अत: वे हमारी सच्ची साथी भी नहीं हो सकती।

१९. सांसारिक विषय वस्तुएँ हमारे में रजोगुण, तमोगण, को बढ़ाती हैं। उनके कारण हम चंचल, दुर्गुणी, व्यसनी बन कर पापी हो जाते हैं। अत: वे हमारी सच्ची साथी नहीं हुई।

२०. सांसारिक विषय वस्तुओं के खाने पीने और सेवन से हमारे तन मन में रोग शोक आदि अनेक व्याधियां आ जाती हैं, अत: वे हमारी सच्ची साथी नहीं।

२१. इनका सेवन हमारे तन मन में विखराब उत्पन्न करता है, मन चंचल, अस्थिर, भटकने वाला हो जाता है। अत: ये हमारी सच्चे साथी हो ही नहीं सकती।

२२. ध्यान या साथ अपने समान या श्रेष्ठ का होना चाहिये। सांसारिक विषय वस्तुएँ न हमारे (आत्मा के) समान हैं और न श्रेष्ठ। अत: वे हमारी सच्ची साथी नहीं हो सकती।

२३. सांसारिक विषय- वस्तुएँ स्थूल हैं और हमारी आत्मा सूक्ष्म है, अत: स्थूल वस्तु सूक्ष्म की सदैव साथी नहीं बन सकती।

२४. हमसे दूसरी विभिन्न शरीरी आत्माएँ भी शरीर को छोड़कर न जाने किधर-किधर चली जाती हैं। हम व्यर्थ ही उनके लिये तरसते और तड़फते हैं। अत: वे दूसरी आत्माएँ भी हमारी सदा ही सच्ची साथी नहीं हो सकती।

२५. सांसारिक विषय- वस्तुएँ हमारे शरीर से मेल खाती हुई भी आत्मा (हम) से मेल नहीं खाती, क्योंकि वे आत्मा की जाति और गुण धर्म वाली नहीं हैं। अत: वे सब हमारी सदैव की सच्ची साथी नहीं।

२६. संसार की विषय वस्तुएँ तीन कारणों (उपादान, निमित्त, साधारण) से उत्पन्न होने वाली कार्य हैं, जबकि हम (आत्मा) इन तीन कारणों वाले न होने से उत्पत्ति रहित अजर अमर हैं। अत: उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ हमारी सच्ची साथी नहीं।

२७. संसार की विषय वस्तुएँ में वैसे श्रेष्ठ उत्तम गुण नहीं हैं जैसे कि हम (आत्मा) में हैं। अत: वे हमारी सच्चे साथी नहीं हो सकती।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-५ अंक-७ मुम्बई जुलाई- २०१४ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. १/-

आषाढ २०७० (जुलाई २०१४) Post Date : 25-07-2014 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८०० / २६६०२०७५ / २२९३१५१८

प्रति,

टिकट

महाव्याहृतियाँ

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय- एम.ए.

ओं भूः। ओं भुवः । ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।।

प्राणायाम के मन्त्रों में ईश्वर के एकाक्षरी या दो-अक्षरी छोटे-छोटे नाम हैं। जिनका जाप प्राणायाम के साथ सुगमता से हो सकता है। इनको 'महाव्याहृतियाँ' कहते हैं। व्याहृति (वि+आ+हृ+ति) का धात्वर्थ है 'बात' या 'शब्द'। परन्तु इनको 'महाव्याहृति' कहने का प्रयोजन यह है कि पवित्र ईश्वर के यह पवित्र नाम हैं। इनके अर्थों का चिन्तन ईश्वर के गुणों का चिन्तन है।

'प्राणायाम' पर सन्ध्या का पहला भाग समाप्त हो जाता है। अर्थात् परमात्मा की महिमा को अपने पिण्ड में अनुभव करना। ईश्वर की उपासना का यह सबसे सुगम आरम्भ है। दुर्भाग्यवश सन्ध्या आरम्भ करने वालों ने इस महत्त्वपूर्ण भाग को कुछ दिखावटी कृत्यों तक ही सीमित रक्खा। सन्ध्या करने वाले सबसे कम ध्यान इस भाग की ओर देते हैं। जिनको दिखावट प्रिय है, वह केवल रूढ़ियों के पालन में ही सारा परिश्रम व्यय कर देते हैं। वह समझते हैं कि केवल तीन बार आचमन लेना या इन्द्रियों को स्पर्श करना ही सब कुछ है। सन्ध्या की पुस्तकों में भी कृत्यों की रस्मों पर ही अधिक बल दिया गया है और इसकी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। ध्यान पर बल नहीं दिया गया या बहुत कम दिया गया है। यह बात बार-बार दुहराने की आवश्यकता रखती है कि सन्ध्या का मुख्य भाग ध्यान हैं। ध्यान मानसिक कर्म है। और यही मुख्य है।

अपने पिण्ड में ईश्वर की सत्ता की अनुभूति हम में ईश्वर की भक्ति का संचार करती है और स्वर्ग-नरक सम्बन्धी भ्राँतियाँ हम से छूट जाती हैं। अपने पिण्ड में ईश्वर का दर्शन करने वाले तीर्थों के अन्ध विश्वासों से भी मुक्त हो जाते हैं। उनको मूर्ति-पूजा की भी आवश्यकता नहीं रहती। मूर्तियाँ तो दूर की वस्तु है। ईश्वर की सत्ता की जो अनुभूति हमारे आँख, कान करा सकते हैं वह अच्छी से अच्छी मूर्तियाँ नहीं करा सकती।

यह सत्य है कि मन चंचल है और वह जल्दी-जल्दी एक चीज से हटकर दूसरी चीज की ओर दौड़ता है, परन्तु आपका शरीर तो भिन्न-भिन्न अंगों का संग्रह है। आप अपने मन को जल्दी-जल्दी एक अंग से दूसरे अंग की ओर ले जा सकते हैं। मन की दौड़ के लिये पर्याप्त अवकाश है। आप सोचने की आदत तो डालिये। आँख के विषय में सोचिये। पलकों के विषय में सोचिये, पुतली के विषय में सोचिये। आँख की भीतरी शक्ति के विषय में सोचिये। आपके शरीर का प्रत्येक भाग आपको ईश्वर तक ले जाने के लिये पर्याप्त है। क्योंकि यह ईश्वर का रचा हुआ है। बड़े-बड़े मन्दिर आपके मन को बड़े-बड़े इंजीनियरों तक ले जायेंगे। परन्तु क्या आपकी छोटी-सी उंगली या आपकी नाक का नथना जिससे आप सांस लेते हैं, किसी बड़े-से-बड़े इंजन से अधिक शिक्षाप्रद नहीं है। आप परेशान रहते हैं कि ध्यान किस वस्तु में किया जाए और कैसे किया जाए। आप कल्पित प्रकाश को देखना चाहते हैं। कल्पित शब्द को सुनना चाहते हैं, परन्तु प्रकाश और शभ्द से एक पग आगे बढ़कर प्रकाश शब्द के आदि स्त्रोत ईश्वर के विषय में सोचना नहीं चाहते। मन को एकाग्र करने का सबसे बड़ा साधन है विचार। स्वामी दयानन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वर के गुण तो इतने अनगिनित हैं कि उसके विषय में सोचते-सोचते मन थक जाएगा। मन के लिये विचार की आवश्यकता है। विचार करने की आदत डालिये। और विचार का आरम्भ अपने शरीर से कीजिये, क्योंकि आपका शरीर आपके लिये निकटतम वस्तु है। आपके शरीर का रोम-रोम आपका पथ-प्रदर्शन करने के लिये उद्यत है।

साधारणतया कहा करते हैं कि मन को बाहर की वृत्तियों से हटाकर भीतर की ओर ले जाइये। यह कहना आसान है, परन्तु करना मुश्किल है। हम जितना बाहर की ओर से मन को हटाते हैं वह बाहर के दृश्यों को अपनी ओर खींचता है। आप भागना चाहते हैं, परन्तु भाग नहीं सकते। यदि आप अपने शरीर के भीतर अङ्गों की रचना और बनावट की दक्षा पर विचार करने लगें तो आपके काम के आसान होने की सम्भावना है। मन को आप किसी वस्तु से हटने के लिये आदेश न दीजिये। अपितु आप किसी विशेष वस्तु के चिन्तन में लगाइये। मन का स्वभाव है कि उसको जिस वस्तु से बचने का आदेश दिया जाए, उसी को अधिक पकड़ता है। यदि आपको नींद न आती हो और मन को बार-बार कहें कि सो जा तो आपको नींद न आवेगी। परन्तु यदि आप कुछ पढ़ने लगें या किसी अन्य विषय का चिन्तन करने लगे तो आप जल्द सो जाएँगे। मन एक नटखट घोड़ा है। यह उसी की आज्ञा का पालन करता है जो उसको वश में करके उस पर सवारी करता है और उसको चैन नहीं लेने देता। आप मन को अपने शरीर के अङ्गों के रचयिता के ध्यान में लगाइये।

अब आगे हम विचार करेंगे कि पिण्ड से आगे कैसे बढ़ा जाए।